S. V[illegible]
BNS

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदः पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ४०	मार्च १९९१	अङ्क ६

R. S.

गाफिल शब्दावली से—

शब्द

क्या फिकर मरने का उसको, प्रेम ने मारा जिसे।
क्या फिकर तरने का उसको, सत्गुरु तारा जिसे।१।
जान की बाजी लगा कर, इस गली में आये थे।
क्या रहा अब पास इसके, सर को है हारा जिसे।२।
बात करने वालों को, इसका मजा आता नहीं।
पा सके हरगिज नहीं, सिकन्दर व दारा जिसे।३।
है चढ़ाई का यह रस्ता, चलते-चलते थक गये।
एक दिन पहुँचेगा वह, तेरा सहारा है जिसे।४।
मुर्शिदे कामिल का दामन, जिसने पकड़ा दिल से है।
डूब वह सकता नहीं, इसने उभारा है जिसे।५।
जिन्दगी जिसने गुजारी हो, इबादत में सदा।
मौत क्या उसे डराये, तुमने संवारा है जिसे।६।
तैरता रहता हमेशा, कमल के मानिन्द वह।
'गाफिल' क्यों डूबेगा वह, तुमने पुकारा है जिसे।७।

अपनी अनसमझी से डंडा लिये फिरते हैं। समझ बूझ तो खाक नहीं और न सार वचन राधास्वामी की शिक्षा के सारांश को ग्रहण किया है, योंही अनाप शनाप वेदान्त के खंडन में लग जाते हैं। वेदान्त संसार का उच्च मार्ग है। जन साधारण को तो उसकी समझ तक नहीं आती, खंडन करना तो दूर रहा! मगर अज्ञानियों को खंडन की पड़ी रहती है। जो मुँह में आता है वह बेसमझे बूझे निकाल देते हैं। जब तक कि वेदान्त की शिक्षा समझ में न आयेगी राधा स्वामी मत का समझ में आना भी असम्भव है। वेदान्त उसके मसलों के समझाने की बीच की सीढ़ी है।

हम यहाँ केवल सार वचन राधास्वामी के शब्द प्रस्तुत करते हैं जिनसे राधा स्वामी मत के समझने में सम्भव है कि कुछ सुगमता हो।

राधा स्वामी सिध; बुंद राधा स्वामी।
राधा स्वामी चन्द, कला राधा स्वामी॥
राधा स्वामी गगन, गिरा राधा स्वामी।
राधा स्वामी धरन, नीर राधा स्वामी॥
राधा स्वामी अग्नि, पवन राधा स्वामी।
राधा स्वामी तीन[1], चार[2] राधा स्वामी।
राधा स्वामी दोय[3], एक[4] राधा स्वामी।
राधा स्वामी सात[5], बीस[6] राधा स्वामी॥

---

(१) तीन गुण (१) अन्तकरण चतुष्टय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। (३) ब्रह्म व माया। (४) सत स्वरूप (५) सात तत्व-सांख्य के असली आदि तत्व आत्मा व प्रकृति, ५ तन मात्रा, (६) दस इन्द्रियाँ और उनके दस देवता।

यह शब्द क्या कहते हैं ? इनसे तुमको अद्वैत की शि मिलती है या किसकी ?

इनसे साफ प्रकट होता है कि राधास्वामी मत में अद्वैत की शिक्षा आदि से अंत तक दी गई है। जो है, वह राधास्वामी हैं। राधास्वामी के सिवाय कुछ भी नहीं है। जो और होगा वह धोका, भ्रम और कल्पना होगी। इसी शब्द को और पढ़ते चलो और सिवाय इस एक विचार के उसमें और कोई विषय न मिलेगा। वाणी कहती है :—

राधास्वामी जुक्त, जोग राधास्वामी।
राधास्वामी भुक्त, भोग राधास्वामी॥

.....

राधास्वामी निमिष[1], जाम[2] राधास्वामी।
राधास्वामी धूप, छाँव राधास्वामी॥

.....

राधास्वामी सृष्टि, सृष्टा राधास्वामी॥

इस शब्द का यह अर्थ भी हो सकता है कि जो कुछ समझो वह केवल राधास्वामी ही को समझो। यह विचार भी अद्वैत ही का विषय है। लेकिन शिक्षा का अन्त इतने ही में नहीं हो जाता। यह दृष्टि को ऊँची कराती हुई इससे भी आगे ले चलती है जिसका वर्णन उस पुस्तक में विवरण सहित मौजूद है। यहाँ हम कबीर साहब का एक प्रसिद्ध दोहा लिखते हैं जो राधास्वामी मत की असली शिक्षा की ओर संकेत करता है।

---

(१) पल (२) पहर।

एक कहूँ तो है नहीं, दूजा कहूँ तो गार।
जैसा है तैसा रहे, कहैं कबीर पुकार॥

—×—

छियानवेवा वचन

प्रेम हर काम का शक्तिशाली साधन है।

प्रेम से, प्रेम में, प्रेम के विचार से, प्रेम के प्रभाव से, प्रेम के आवेश में आकर मनुष्य कठिन से कठिन काम को आसानी से कर लेता है। जो बात दूसरी तरह पर असंभव होती है, वह उसके द्वारा सरल हो जाती है।

प्रेम को लोगों ने अंधा बताया है और प्रेमी को बावला भी कहा जाता है। अंधे अपनी टेक रखते हैं। चूंकि प्रीति आँखों के दो चार होने से आती है, इसलिये इन्हें बेमुरौव्वत अर्थात् रुखाई का व्यवहार करने वाला बताया जाता है। दीवाने को विवेक नहीं रहता। उसका कोई विश्वास नहीं करता। वह जो कुछ न कर डाले वही थोड़ा है।

क्या प्रेम सचमुच अंधा और दीवाना है। एक दृष्टि से तो ये विशेषायें उसमें पाई जाती हैं। वह अंधों और दीवानों की तरह किसी की नहीं सुनता लेकिन दूसरी दृष्टि से उसके दोष गुण मालुम होते हैं। वह अंधा नहीं है बल्कि सच्चो आंख वाला है। वह जिसको देखता है, उसी को देखता है। दूसरी ओर उसका ध्यान नहीं जाता और उसी एक को वह सब कुछ मानता और जानता है। यह अंतिम श्रेणी का वचन का पालन है। इसी प्रकार वह दीवानगी नहीं है जिस ओर उसका विचार चला गया, वह उसी ओर का हो गया। उसकी विवेक शक्ति एक ही ओर बढ़ती है। दूसरी ओर

उसका ध्यान नही होता। एक का होना और होकर रहना अच्छा है। अनेक को चित्त देना भ्रम, भ्रान्ति, दुख, और अशान्ति में पड़ना है। प्रेम अद्वैत है, वह द्वैत नहीं है! आत्मज्ञान के विषय में उससे अधिक और किसी से सहायता नहीं मिलती। यह उसका लक्षण है!

प्रेम हर प्रकार के कष्टों और क्लेशों को सहन करने की शक्ति रखता है। यही नहीं, किन्तु डाट फटकार सहने में उस जैसा दूसरा नहीं है। यह दुखों का सामना करता हुआ रहता है। वह डाट फटकार का लक्ष्य बना हुआ उनको अपनी बड़ाई मानता है।

प्रेम में अत्यन्त उदारता और निर्लोभता है। यह सब कुछ दे डालता है। इसमें कृपणता नाम का भी नहीं है। यह उसमें गुण है।

प्रेम राजा को भी अपने आधीन कर लेता है। यह अधीनता नही है किन्तु प्रबल शक्ति है जो मुर्दा शरीर में नई रूह फूँकने का चमत्कार दिखाता है। वह प्रेम ही है जो हर बुरी से बुरी वस्तु को अच्छा बनाने की निपुणता रखता है! इसी कारण से संतों, साधुओं, वैष्णवों और सूफियों ने प्रेम और भक्ति ही को अपनी सफलता का साधन माना हैं। और इन सबके मार्ग प्रेम मार्ग कहलाते है। जिसमें प्रेम आ गया उसको सफलता मिलने में कुछ भी संदेह नहीं रहता।

प्रेम भाव इक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
चाहे घर में वास कर, चाहे बन बन जाय।।

प्रेम ही जीते जी मरने का मार्ग है। जीते जी किसी से मरा नहीं जाता मगर यह मरने तक की हिम्मत रखता है। बिना जीते जो मरे हुए सफलता किसके हिस्से में आई है।

एक कवि का कथन है :—

तू मरने से डरता है गर, दीदार की ख्वाहिश न कर।
गर नहीं बिकता है खुद, फिर यार की ख्वाहिश न कर ॥

—×—

सत्तानवेवां वचन

ज्ञान

ज्ञान प्रेम है। प्रेम और ज्ञान में अन्तर नहीं है। ज्ञान का प्रारम्भ प्रेम से होता है और प्रेम का अन्त ही ज्ञान है। प्रेम क्या है ! दिल देना ही प्रेम है। उपनिषद का वाक्य है:—

"ईशावास्यमिदं सर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत्"

इसका अर्थ है "इस जगत में जो कुछ है वह ईश्वर से ढका हुआ है," अथवा "इस जगत को ईश्वर के विचार से ढक दे।" यह मन देने का विषय है। ईश्वर को मन दिया और उसी के विचार से सारे संसार को ढक दिया। संसार में जो कुछ है वह ईश्वर ही है। उसके सिवाय और कुछ नहीं है यह प्रेम है और यही ज्ञान है। सोच समझ कर देखो। ज्ञान और प्रेम में क्या अन्तर है ? मन दिया गया और मन प्रेमी को केन्द्र बना कर उसी में ठहर गया। इसके सिवाय और ज्ञान क्या होगा ?

उपनिषद फिर कहती है:—"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मागृधः कस्यस्विद्धनम्" "उसने जो कुछ दिया है उसी को भोग और किसी के धन का लालच न कर।" यह मन देने की विशेष है। जिसमें यह विशेषता आ जाती है उसी को ज्ञान का अधिकार है। इसके सिवाय जो तृष्णा और लोभ में फँसा हुआ दर दर मारा फिरता है उसे कैसे ज्ञान की प्राप्ति होगी !

उपनिषदों के इन दोनों शब्दों में असलियत का रहस्य है। पहली बात तो यह है कि ब्रह्म को यथेष्ठ रूप से समझकर उसी के भाव को इतना बढ़ा देना चाहिये कि सब में वही दीखने लगे। दूसरी बात यह है कि जब तक मनुष्य उसकी दी हुई सम्पदा से सन्तुष्ट न होगा, वह अपने हृदय के भाव से जगत को कभी न ढक सकेगा और न जगत को ब्रह्ममय या ब्रह्म सरूप देख सकेगा।

राधास्वामी मत इसी विचार से गुरू भक्ति पर जोर देता है। पहले सत्संग करके चित्त को एकाग्र और सन्तुष्ट बनालो ताकि वह गुरु से मिलकर एक हो जाय और फिर गुरु की दृष्टि लेकर इस जगत को गुरु मय देखने लग जाओ। ब्रह्म और गुरू एक ही अर्थ और अभिप्राय के शब्द है। ब्रह्म में और गुरू में भेद नहीं होता। यदि कोई भेद मानता हैं तो फिर आत्म ज्ञान के मार्ग में उसके आने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, प्रारम्भ में सत्संग के बचन से इतना समझ लेना है कि ब्रह्म सामान्य चेतन है, जो व्यापक है और गुरू विशेष चेतन है, जो अपना तेज मानव शरीर में दिखा रहा है। अग्नि हर जगह है। लकड़ो में भी है, पानी मैं भी है, राख, मिट्टी, और सब में है, लेकिन यह सामान्य अग्नि है। इससे न रोटी पक सकेगी और न उसका रूप ही दिखाई देगा। लकड़ी को चकमक पत्थर के रगड़ने और दियासलाई के घिसने से जो अग्नि पैदा होगी, वह न केवल अपना विशेष रूप दिखायेगी, किन्तु तुम्हारा खाना पका देगी और दोनों प्रकार से तुम्हारा लाभ होगा। यह गुरू धारण करने का मतलब है।

एक ओर तुम हो, दूसरी ओर ब्रह्म है। तुम आँख वाले हो। ब्रह्म सूर्य्य है। पहले अपनी आँख खोलो। उसका उपाय गुरू बतायेंगे और इस आँख के खुलते ही प्रेम रूपी सूर्य्य का

आप ही आप दर्शन मिलेगा। तुम ब्रह्म के साथ अपनी तुलना करके विवेक की सब बातों को एक एक करके उड़ाते जाओगे। उस समय स्वयं हो कह उठोगे कि **ब्रह्म हमसे अलग नहीं है।** आरम्भ में केवल इतना ही समझने की आवश्यकता है। यह ज्ञान मार्ग की भूमिका है। आगे और जो कुछ होगा, उसका वर्णन आगे के बचनों में व्याख्या सहित आयेगा।

ब्रह्म हम में है, गुरू हम में है। ब्रह्म या गुरू से अलग नहीं हैं और यह उसी प्रकार से है जिस प्रकार से अग्नि हर वस्तु में मौजूद है। वह तुम में भी है। तुम गर्मी से रहित नहीं हो। अग्नि की गर्मी ही जीवन की पहिचान है। अगर गर्मी नहीं तो तुम जिंदा कैसे रह सकते हो! होने को तो तुम में वह मौजूद है लेकिन समझने बूझने के लिये गुरू की सहायता की आवश्यकता है।

जिन लोगों को राधास्वामी मत के सुरत शब्द योग के अभ्यास से सम्बन्ध है, वह जानते हैं कि ब्रह्म या गुरु की खोज बाहर नहीं की जाती। भीतर ही की जाती है। यदि वह सचमुच हमारे भीतर हैं, तो हम फिर उससे अलग कब हुये या हो सकते हैं! हाँ, भ्रम के वश जो चाहे वह कह लिया जाये, इससे हानि नहीं है।

जिसको वह मिला है, मिलता है या मिलेगा, उसको अपने ही भीतर मिला है, मिलता है और मिलेगा। बाहर न मिला है न मिलता है और न मिलेगा। परन्तु यहाँ सवाल यह है कि क्या वह बाहर नहीं है? इसका उत्तर उपनिषद् के वाक्य में दे दिया गया है। पहले मन को स्थिर करो। यह योग की क्रिया है। दूसरे उसी ख्याल से जगत के ढकने का प्रयत्न सोचो। फिर वही दृश्य ब्रह्म या गुरु के ख्याल में तुमको बाहर

भी दिखाई देने लगेगा और भीतर बाहर ब्रह्म ही ब्रह्म और गुरु ही गुरु प्रतीत होने लगेगा।

—×—

अठानवेवाँ वचन

व्यापक ब्रह्म

उपनिषदों में वर्णन है:—

'यदि वह पूर्ण आनन्द आकाश में व्यापक न होता तो जीवन और आनन्द का नाम निशान तक न होता।'

शब्द स्पष्ट हैं। जो कुछ है वही है। उसके सिवाय और कुछ भी नहीं है। वह पूर्ण है और हमारा जीवन उसी की खोज में लगा हुआ है। जब से हम पैदा हुये करोड़ों वर्ष या इससे भी अधिक समय से हम उसी की खोज कर रहे हैं, परन्तु वह हाथ नहीं आता है हाथ किस प्रकार से आये। हम तो उसे बाहर ढूंढ़ रहे हैं।

वस्तु कहीं ढूंढ़े कहीं केहि विधि आवै हाथ।
कहैं कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजै साथ॥

यह कारण है कि वह मिलता नहीं परन्तु क्या न मिलने से हमारी खोज स्थगित हो जाती है। राम राम कहो। हर वस्तु स्थिर हो जाती व ठहर जाती है, किन्तु इस खोज की चेष्टा एक क्षण के लिये भी हमसे अलग नहीं होती। हम शरीर में उसकी खोज करते हैं। हम चाहे जानें या न जानें, हम चाहें ज्ञानी हों या अज्ञानी, ब्रह्म का विचार एक पल भी हमसे अलग नहीं होता।

हम खाते पीते हैं, तृप्त नहीं होते और उससे उकता जाते हैं। मन में कहते हैं कि यह वह वस्तुयें नहीं हैं जो हमको

हमेशा के लिये सुखी कर दें। हम धन, मान, बल और राज्य के पीछे फिरा करते हैं, लेकिन इससे तृप्ति नहीं होती और आप ही आप मान जाते हैं कि यह वह वस्तु नहीं हैं जो असली सुख दे सकें। इसी प्रकार और भोगों का अनुमान लगा सकते हो। कौन मनुष्य संसार में ऐसा है जो छाती पर हाथ रख कर शपथ पूर्वक कह देगा कि बस! हमारी तृप्ति हो गई। हम और कुछ नहीं चाहते। ऐसा यहाँ एक मनुष्य भी नहीं है जिसको पूर्ण सुख मिला हो। जहाँ देखो वर्तमान अवस्था की शिकायत, राजा, प्रजा अमीर, फकीर सब ही तो शिकायत करते हैं। भ्रम में पड़ा हुआ धनी कंगाल को अपने से अधिक बड़ा समझता है। अज्ञान के वश में आया हुआ राजा कहा करता है कि मुझे तमाम दुनिया की फिकर है। मुझसे अच्छा तो प्रजा है कि उसको केवल अपनी ही चिंता रहती है। अभिप्राय यह कि दुनिया शिकायत की जगह बनी हुई है जिसमें एक भी आदमी ऐसा दिखाई नहीं देता जो शिकायत न करता हो। इनकी शिकायत भी ठीक है, क्योंकि इन सबके मन में किसी ऐसी वस्तु की चाहना है जो इन्हें नहीं मिलती और ये उसे बिना जाने पूछे, बिना सोचे समझे, बाहर और अपने से अलग ढूंढते हैं। यह कुरेद सबके मन में है और यह उस समय तक जाने वाली नहीं है, जब तक यह पूर्ण न हो जाय। इसी पूर्णता का नाम ब्रह्म है। इसी पूर्ण अवस्था को गुरू की प्राप्ति कहते हैं। क्या गुरू के जाहिरा धारण कर लेने से यह प्राप्त हो जाती है? कभी नहीं। यह केवल प्रारम्भिक सीढ़ी है और अभी तक तो गुरू की मुराद (अभिप्राय) भी ठीक तौर से समझ में नहीं आई है। केवल ब्रह्म ब्रह्म या अहं ब्रह्म कहने से होता क्या है! हाँ, ब्रह्म का नाम निस्संदेह सुन लिया गया। मगर यह न परोक्ष ज्ञान है न अपरोक्ष ज्ञान

है । गुरू की सेवा में आने जाने उठने बैठने से वाह्य ज्ञान और जबानी जानकारी का तो लाभ होगा, परन्तु जब तक गुरू से अन्तर मुखी साधन का भेद लेकर अपने ही अन्दर खोज न की जावेगी, तब तक हाथ क्या आयेगा ! कुछ भी नहीं ।

- सच्चे गुरू की प्राप्ति अपने अन्दर ब्रह्म के स्थान पर होगी । जिस समय हमारा मन अपने अंदर ब्रह्माकार बनने लगेगा, उस समय यह समझ आयेगी कि गुरू और ब्रह्म से तात्पर्य क्या है । । उस समय साधन करने वाला आध्यात्मिक भावों के नशे में मस्त होकर नारा लगायेगा ।

भेदी लिया साथ कर, दीनी वस्तु लखाय ।
कोटि जन्म का पंथ था, पल में पहुचा जाय ।।
घटका पर्दा खोल कर, अन्तर कर दीदार ।
बाल सनेही सांइयां, आदि अन्त का सार ।।

—×—

निन्नानवेवाँ वचन

सच्चा त्याग और वैराग

त्यागी को सब कुछ प्राप्त होता है । वैरागी को पूर्ण सफलता होती है । जो त्यागी यह कहता है, कि मैंने सबका त्याग कर दिया, मुझे अब किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रही, वह विभिन्न शब्दों में अपनी आत्म अवस्था का वर्णन करता है, जो पूर्ण है, क्योंकि पूर्ण ही को किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती । और लोग तो अपूर्ण होने के कारण से इच्छा के जाल में फँसे रहते हैं । जो वैरागी कहता है कि मैं राग रहित हूँ, और मुझे किसी से भी सम्बन्ध नहीं है वह पूर्ण है, वह अपनी असलियत और निज स्थिति की घोषणा करता

क्योंकि बैराग आत्मा ही का गौरव है। यह त्याग और बैराग की सूक्ष्म किन्तु स्पष्ट व्याख्या है।

राधा स्वामी मत में इस त्याग और बैराग का दूसरा रूप स्थापित किया गया है। असबात (एति) पसन्द होने के कारण वह गुरु के स्वरूप को इष्ट पद मानकर सब कुछ उसी पर न्योछावर कर देता है, "तन मन, धन सब गुरु पद अर्पण।" यह ग्रहण मार्ग है। बात वही है। दोनों अवस्थाओं का अभिप्राय एक ही है, यहाँ शिष्य सब कुछ दे दिलाकर बिल्कुल स्वतन्त्र हो गया है और इच्छा को अपने आधीन बना लिया है। वहाँ त्यागी और बैरागी ने छोड़ छाड़ कर स्वतन्त्रता प्राप्त करली है।

त्याग और बैराग नेति (नफी) का मार्ग है। और राधा स्वामी मत अति (असबात) का मार्ग है। एक तो नहीं, नहीं कहता हुआ भागता है, दूसरा हाँ हाँ की हाँक लगाता हुआ सब ग्रहण की हुई वस्तु को अपने इष्ट के अर्पण कर देता है, दोनों एक जैसे हुये या नहीं?

वास्तव में न कहीं ग्रहण है न त्याग है! यह काम करने के केवल ढंग हैं। छोड़ना सहल है या लेना आसान है? त्याग और बैराग में सहारा नहीं होता। केवल ग्रहण और स्वीकार में सहारा रहता है हम स्वभावतः बिना सहारे के कोई काम नहीं करते। आदत ही ऐसी पड़ गई है, इस लिये प्रेम मार्ग एक प्रकार का ग्रहण मार्ग कहलाता है। गुरु का ग्रहण करना ही इसकी विशेषता है। अगर त्याग और बैराग को देने के अर्थों में बदल दिया जाय तो दोनों मार्ग समान हो जाते हैं वरना दूसरी हालत में न ग्रहण का असली अर्थ समझ में आता है और न त्याग ही का। लेने की अपेक्षा देने में अधिक

प्रसन्नता है। जो कर्म कि ब्रह्म के अर्पण कर दिया जाता है, वह पुरुष को कारण होता है।

"जो कर्म करो वह ब्रह्म के अर्पण करो।" कर्म और कर्म के फल को ब्रह्म के अर्पण करना एक बात है, लेकिन अपने आप ही को उसके अर्पण कर देना दूसरी बात है, यह प्रेम है, यह विभिन्न प्रकार का त्याग है, जिसे न त्याग ही कह सकते हैं और न ग्रहण। और साथ साथ यह दोनों हैं हम उसके हैं वह हमारा है, इससे अधिक एति (स्वीकृति और क्या हो सकता है। हम और हमारा कहने के लिये दो बातें हैं। आदि में यह द्वैत भी है लेकिन थोड़ा ही आगे चलकर द्वैत भाव का इस प्रकार अभाव हो जाता है जैसे गधे के सिर से सींग। इसका परिणाम यह होता है कि हमारे भाव हमारे नहीं रहते और अहम का मैं पना जाता है। हम किसी ऐसे भाव के आधीन रहते हैं जिसे न हमारा कह सकते है, और न तुम्हारा। यह अन्तिम दर्जे की समता है और इसका नाम ज्ञान है।

—×—

सौवां वचन

ज्ञान का आशय

ज्ञान का आशय जानना और समझना नहीं है किन्तु ज्ञान का आशय होना और हो जाना है, जो हम वास्तव में थे और होंगे। जो हमसे कभी पृथक नहीं था और न पृथक हो सकता है।

(१) मन तू शुदम तू मन शुदी मन तन शुदम तू जां शुदी।
ता कस न गोयद बादअज़ी मन दीगरम तू दीगरी॥
मैं तू हुआ तू मैं हुआ, मन तन मेरा तू जां हुआ।
अब कोन कह सकता है यह, मैं और हूं तू और है।

यह सीमित पने के दोष का नाश होना और असीमित बन जाना है। असीमित ही पूर्ण है और पूर्ण में कोई इच्छा नहीं रहती। इसी का नाम ज्ञान है।

यहाँ आकर न जानना है, न नहीं जानना है, ज्ञान और अज्ञान दोनों ही लोप हो जाते हैं। इस अवस्था का फिर कोई आदमी वर्णन करना चाहे तो कैसे कर सकता है। उपनिषद् का वाक्य है जिसका अर्थ है:—"हम यह नहीं कह सकते, कि हम उसे अच्छी प्रकार जानते हैं, और न हम यही कह सकते हैं कि हम उसे नहीं जानते," यह ज्ञान और अज्ञान का मिलाप है। यह अंश और कुल का संयोग है। सीमा और असीमा दोनों ही लोप हैं। यहाँ न सीमितपने का दोष है न असीमितपने का गुण है। लो, अपूर्ण और पूर्ण की पहिचान जाती रही। न शिष्य रहा और न गुरू ही रह गया। क्या किसी में शक्ति है अब उनके बीच अन्तर बता सके। उपनिषद् का कथन है:—"यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मन्सा च आनन्दम् ब्रह्मणो विद्वान न विभेति कुतश्चन।" "वाणी ब्रह्म में जाकर विवश होकर लौट आती है। यही दशा मन की भी हो जाती है। लेकिन वह जो उसी के आनंद से जानता है, सम्पूर्ण भयों से स्वतन्त्र हो जाता है।" इसी उपनिषद के वाक्य की परम संत और आदि गुरू कबीर साहब ने और भी अधिक ज़ोरदार शब्दों में इस प्रकार कहा है :—

हद छोड़ बेहद गया, लिया ठीकरा हाथ।
भया भिकारी राम का, दर्शन पाय अनाथ ॥१॥
हद में पीव न पाइया, बेहद में भरपूर।
जो बेहद की गम लखे, ताको पीव हजूर ॥२॥
हद न रहा बेहद में, पल में देखे नूर।
मनका तहाँ लगाइये, जहाँ बाजे अनहद तूर ॥३॥

हद छोड़ बेहद गया, सुन्न किया अस्थान ।
मुनिजन गम पावें नहीं, तहाँ मुझे विश्राम ॥४॥
हद छोड़ बेहद गया, रहा निरंतर होय ।
बेहद के मैदान में कबिरा सुख से सोय ॥५॥
हद में रहें जो मानवा, बेहद रहें जो साध ।
हद बेहद दोनों तजे उसका मता अगाध ॥६॥

जहाँ तक तन है वहाँ तक हद है। जहाँ तक कहने सुनने का संबंध है, वहाँ तक सीमितपना है। कहने वाला और सोचने वाला मनुष्य है, लेकिन जिसका मन और जिसकी बातें दोनों ही थक थका कर बेबस हो गये उसी का नाम साधू है। यहाँ न हद है न बेहद ही है, न अंश है न पूर्ण है न समुद्र है न बूंद है। न जीव है न ब्रह्म है। वह क्या है ? कबीर साहब उसे अगाध कहते हैं। जिसमें बार पार तक नहीं है। न वह अब छिछला रहा, न गहरा रह गया। उसकी थाह भी कोई लेना चाहे तो किस प्रकार ले सकता है ? थाह तो छिछले और गहरे की ली जाती है। जो थाह और अथाह दोनों ही से न्यारा है, वह कोई विचित्र वस्तु है जो वर्णन नहीं आती ! जो वर्णन में आती है और जिसे मन सोच सकता है, वह माया है। माया नाम है अक्ली माप और तमीजी पैमाने का। यहाँ माप और पैमाना नहीं रहता। अक्ली माप ब्रह्म तक किसी न किसी सूरत में की जाती है। ब्रह्म असीमित है और इस ब्रह्म तक माया है, क्योंकि अगर ब्रह्म में माया न होती तो वह कहने सुनने का विषय कैसे होता ! इसी कारण उसे राधास्वामी कहा गया, जो मन और वाणी दोनों से परे है। वहाँ इनकी गम नहीं है। यदि इनकी वहाँ तक पहुच संभव है और कोई व्यक्ति उनकी प्रशंसा कर सकता है तो फिर वह नहीं है। राधास्वामी इष्ट और आदर्श है। केवल समझाने

बुझाने के लिये यह नाम रक्खा गया है अन्यथा उसका कोई नाम भी नहीं है। वह अनामी है। लेकिन क्या अनामी गुण नहीं है? गुण वह भी है, परन्तु बिना गुण वर्णन किये हुये किसी को उसके अनुभव का अवसर कहाँ दिया जा सकता है विवश ऐसा संकेत किया गया है अन्यथा वह कहने सुनने की सीमा से पार है। जहाँ तक शब्दों का सम्बन्ध है वहाँ तक माया की कोई न कोई सूरत मौजूद है। इस कारण से चेतावनी देकर मौन होना पड़ता है। रामायण में कहा गया है कि :—

—x—

वचन १०१

आश्चर्य का विषय

यदि ऐसी दशा है तो फिर उसका कहना व्यर्थ है। बात भी सच्ची है। इसकी सचाई से इन्कार किसे है! परन्तु कौन ऐसा मनुष्य है जो इसे जानता हुआ भी कहने से अपनी जिव्हा को रोकता है। कहने वाले उसे कहते ही रहते हैं। सुनने वाले उसे सुनते ही रहते हैं। वह हर एक के कहने सुनने का विषय बना हुआ है। इससे अधिक विचित्र बात और क्या होगी। क्या यह आश्चर्य का विषय नहीं है? है और अवश्य है।

फिर कहा सुना क्यों जाता है? और कोई क्यों उसे कहता सुनता रहता है? कारण यह है कि वह/सब उसके भंडार से प्रगट हो रहे हैं। उसके प्रगट करने को चुप कौन कर सकता है! हम जो करते धरते हैं उसी का तो प्रकाश है। हम

और है क्या ? उस करने धरने को रोका करे
उसका अनुभव आनन्द है । हमारा अपना अनु
है । गूंगा गुड़ खाता है, बोल नहीं सकता, ले
स्वाद से वह अनजान नहीं है । वह बोले चाहे
आनन्द और स्वाद की हालत उसमें मौजूद
रही है, वह उससे अलग नहीं है । यह कारण है
हर समय होता रहता है । उसकी बात चीत
है । वह आनन्द है और हम भी आनन्द हैं, आ
है, आनन्द में आनन्द लिया जा रहा है । मछल
पानी तो पानी ही है, यह पानी में पानी का अ
अतिरिक्त और क्या है ! उपनिषद के वा
अर्थ है:—

ब्रह्म जो ब्रह्म को सत्त, चित्त और अनन
जीवों के हृदय रूपी गुफा में छुपा हुआ जानत
रूपी आकाश की तरह सबमें व्यापक है उसक
नाएं उस सर्व ज्ञान ब्रह्म के मिलाप से पूरी हैं

हम जीवों को भ्रम है, और हम भ्रम में प
होने की लालसा रखते हैं, क्योंकि अगर हम उ
जायेंगे, तो उसके गुणों से वंचित रहेंगे और
का क्रम कभी कटने पर न आयेगा । यह ह
सुनने, दुआ, प्रार्थना और कर्म धर्म का प्रयो
उसी की चाह है, सब घर पर्द उसी की तलाश
तक खोज रहेगी, कहने सुनने के सिलसिले को
कर सकता हूं । सब उसी से उत्पन्न हु
या बिना समझे उसी की ओर चले जा रहे हैं ।
उड़ते हैं । आकाश पर चढ़ कर पहाड़ों पर

मासिक सन्देश

परमदयाल सद्गुरू हजूर मानव दयाल

(डा० ईश्वरचन्द्र शर्मा जी महाराज)

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश

मेरे परम प्रिय सत्संगियों !

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई ।

पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको १६ सितम्बर १९६० तक के सत्संग दौरे की सूचना दी थी । बम्बई के हवाई अड्डे पर करीब २५ सत्संगी, आचार्या निर्मला पण्डित तथा उनके परिवार वाले, जिनमें से श्री रसूल आजाद, श्री ओमप्रकाश तिवारी, हैदराबाद से आये हुए श्री भगवान व्यास के नाम उल्लेखनीय हैं, हमारे स्वागत के लिये हवाई अड्डे पर मौजूद थे । इस बार श्रीमती सरला भान भी हवाई अड्डे पर उपस्थित थीं । मैं आपको यह बताना भूल गया कि आबूढाबी से श्री रवि पंडित की पत्नी हमारे साथ बम्बई चली थी । श्री रवि पंडित जी आचार्या निर्मला पंडित के सुपुत्र हैं, पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखते हैं । उनकी पत्नी रेनुका भी उतना ही अगाध विश्वास रखती हैं । यहां पर मैं एक बात बताना चाहता हूँ जो हर प्रकार के चमत्कार की व्याख्या श्रद्धा और विश्वास के आधार पर प्रमाणित करती हैं ।

मैंने पिछले वर्ष आपको बताया था कि हम श्री रवि पण्डित के विवाहोत्सव पर श्रीनगर गये थे । उसी दिन से ही रेनुका भी रवि पण्डित की तरह सन्तमत में प्रविष्ट हो गयीं थी । अब वह पत्नी बनकर अपने पति के पास आबूढाबी जा

सत्संग आयोजित हुआ, जिसमें करीमनगर के बहुत से सत्संगी सम्मिलित हुए। श्री रामकोट रेड्डी हमेशा परमदयाल जी के आगमन पर आन्ध्र प्रदेश के दौरे पर २४ घण्टे उनकी सेवा में रहते थे। मेरे साथ भी हमेशा रात-दिन आन्ध्र प्रदेश के दौरे पर सेवा में रहते हैं। उसी दिन हम दक्षिण काशी वेमलवाड़ा भी गये और वहाँ पर एक सत्संग दिया। सायंकाल करीमनगर से होते हुए हम रात्रि के दस बजे राधास्वामी जनरल सत्संग राजपूत बाड़ी केन्द्र हनमकुण्डा में पहुंच गये। इस मासिक सन्देश के लिये यहाँ तक के दौरे की सूचना पर्याप्त है। मेरे परम प्रिय आत्मसंगियों! मेरे अपने ही अंश! मैं आपको इस महीने की सद्भावना और आशीर्वाद भेजता हूँ और आपके जीवन के लिये मंगल कामना करता हुआ आशा करता हूँ कि आपकी भक्ति सफल रहे।

सबको राधास्वामी!

आपका फकीरमय
मानव

—×—

गतांक का शेष

फिर उसी समुद्र की ओर जा रहे हैं। नदी नाले और पानी की एक-२ बूंद समुद्र हो होना चाहती है, क्योंकि वह समुद्र ही से निकले थे। समुद्र के पूर्णता का संस्कार स्वाभाविक रूप से उनमें मौजूद है और स्वभाव के कारण वह सबके सब उसी ओर रुख किये हुए चले जा रहे हैं, ताकि उसके वक्षस्थल में अपने आपको लयकर दें कमी और सीमितपना मिट जाय और असली आनन्द जो उसका रूप है, सबको प्राप्त हो जाय। उपनिषद् का कथन है—'यद् तव हृदयम् सम तदस्तु हृदयम तव।'

"तेरा हृदय मेरा हृदय बन जाये।' "मैं तुझ जैसा हो रहूँ।', यह सबकी प्रबल इच्छा रहती है।

वचन १०१

वही इष्ट पद है

उपनिषद की वाणी है :—

'वही पूर्ण अवस्था है।' 'वही पूर्ण धन है।' 'वही पूर्ण लोक है।' 'वही पूर्ण आनन्द है।' 'वही पूर्ण ज्ञान है।' 'वही पूर्ण जीवन है।' 'वही पूर्ण अनुभव है।' 'वही पूर्ण ध्रुवपद, पूर्ण निर्वाण और पूर्ण सद्गति है।'

अगर हम उसकी इच्छा न करें तो फिर किसकी इच्छा करें! और यह हमारी इच्छा और किससे पूरी होगी? जहाँ देखो उसी इच्छा का दृश्य दिखायी दे रहा है। जिसको सुनो यही गीत गा रहा है। भाषा अलग-अलग है। राग और सुर में में व अलाप में भिन्नता है परन्तु अभिप्राय सबका एक है। उसी के लिये यह सब कुछ किया जा रहा है। दुःख सहते हैं, कष्ट उठाते हैं। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में बदलते रहते हैं। बचपन, जवानी और बुढ़ापे के कष्ट, कर्म, उपासना और ज्ञान के पुण्य कर्म, हाकिमों के कोप, गुरुओं की उपाधि, वेद

और शास्त्रों का पढ़ना, ईश्वर और ब्रह्म की उपासना, जीविका उपार्जन, लिखना और पढ़ना सब उसी के लिये तो है। लोग जानते नहीं, समझते नहीं, भ्रम के शिकार होते हैं जो वस्तु कि सुगम है कठिन हो रही है।

गुरु के पास जाने से इसकी समझ आती है और जहाँ यह समझ आ गई फिर क्या है! काम आसान हो जाता है। और बाह्य दृश्यों को देखते हुए भी हमारा चित्त अपने निज रूप की ओर आकर्षित हो जाता है। जिसकी खोज में हम बाहर भटकते रहते हैं, उसे अपने ही अन्दर पाते हैं। अगर वह हम में न होता तो फिर उसका मिलना असम्भव था। वह हम में और हमारे अन्दर है। इस कारण से हम उसे पाते हैं और उसे पाकर सदा के लिये तृप्त हो जाते हैं। यह गुरु की कृपा है।

परमसन्त कबीर साहब की महा अनुभवी वाणी है :—

जेहि कारण भुंइ बहु फिरे, घूमे देश विदेस।
पिया मिलन जब होइया, आँगन भया बिदेस ॥१॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, प्रगटी जोत अनन्त।
संशय छूटा सुख भया, मिला पियारा कंत ॥२॥
झलक लगी जोगी हुआ, मिट गई ऐ चातान।
उलट समाना आप में, अब भया ब्रह्म समान ॥३॥
हिम से पानी हो गया, पानी भी हुआ भाप।
जो पहले था सो भया, प्रगटा आप ही आप ॥४॥
आया था संसार में देखन जग का रूप।
सन्त समागम सों पड़ा, अजर अलेख अरूप ॥५॥

—×—

वचन १०३

जाओ गुरु की संगत में

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

सत पुरुष राधास्वामी की वाणी है।

गुरु करो खोज कर भाई, बिन गुरु कोई राह न पाई ।।१।।
जग डूबा भव जल थारा । कोई मिला न काढ़नहारा ।।२।।
जग पंडित भेष विचारे। क्या जोगी, ज्ञानी हारे ।।३।।
सन्तन से प्रीति न धारी। क्यों उतरें भव जल पारी ।।४।।
सब तीर्थ व्रत पचेरे। पढ़ विद्या मान भरेरे ।।५।।
भक्ती रस नेक न पाया। भक्तों की शरण न आया ।।६।।
भक्ती का भेद न जाना। गुरु को सत् पुरुष न माना ।।७।।
गुरु सबको पार लगावें। जो जो उन चरण धियावें ।।८।।
गुरु से तू बेमुख फिरता। मन के नित सन्मुख रहता ।।९।।
कर्मों से पचता खपता। नर देही बाद गंवाता ।।१०।।
अब चेतो समझो भाई। कर प्रीति गुरु संग नाई ।।२२।।
कह कर राधास्वामी गाई। करनी कर मिले बड़ाई ।।२३।।

अब तक तीन बातें बताई गयीं। यह पहली बात है कि अध्ययन निरीक्षण और अनुभव से अपनी जानकारी को बढ़ाओ। दूसरी बात यह है कि गुरू की संगत में जाकर उनके वचन सुनो, और सत्संग के वचनों के द्वारा अपनी जानकारी को सम तुल्य बनाने की योग्यता प्राप्त करो, और तीसरी बात यह है कि गुरू को धारण करो।

यहां तक तो बाहरी बातों से सम्बन्ध है। यह बाह्य विधि है। अब आगे के वचनों में अन्तर मुखी विधि का उपाय बताया जायेगा।

यदि यहाँ तक समझ लिया तो आगे का विषय समझ में आयेगा, और अगर इसे नहीं समझा है तो फिर उसका समझना बहुत कठिन है।

।। चतुर्थ भाग समाप्त ।।

प्रवचन

(बम्बई १४-१ ६६)

परमसंत दयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

देखो मित्रो ! मैं बम्बई आया। तुम कुछ सत्संगी दिल्ली से टेपरिकार्ड लेकर के आये हो। मैं सोचता हूँ :—

मरेंगे मर जायेंगे कोई न लेगा नाम।

क्या तुमने पाखंड का जाल बनाया है ? गुरू बन गया, उपदेश देता है। लोग मत्था टेकते हैं। सेवा करते हैं। फिर मैं अपने से पूछता हूँ कि तू कौन है ? कहां से आया है ? किसने तुझे बनाया हैं।

सुनो मित्रो ! हम संसार में पैदा होते हैं, संसार देखते हैं हम को ख्याल आता है कि संसार का बनाने वाला कोई है। मैं भी संसार में आया। ख्याल आया कि ईश्वर कोई है। परमात्मा कोई है। उसके मिलने की उत्कण्ठा ने दिमाग में प्रवेश किया। हिन्दू था, ब्राह्मण के घर में जन्म लिया था। राम, कृष्ण, शिव आदि की पूजा करता रहा। चूंकि एक धुन थी कि मालिक को मानव रूप में देखूं। एक संस्कार रामायण और भागवत से मिला था कि वह अवतार लेता है। इस कारण वर्षों तक प्रबल इच्छा करता रहा कि वह मालिक मानव रूप में मिल जाय। मेरा एक दृश्य था जो मुझको दातादयाल (महर्षि शिव) के चरणों में ले गया। उस पवित्र विभूति ने मुझको उस असली मालिक से मिलने के लिये यह नाम दान (नाम की दीक्षा) दिया था। मेरा जीवन नाम जपते हुए बीत गया। चूंकि राधास्वामी मत की पुस्तकों में, कबीर की पुस्तकों में सब धर्मों का खण्डन था—वेदान्त भी अधूरा,

अन्तरगत रखा हुआ था, चित्त में एक भावना थी कि उस र को मिलू, जिसका जिक्र यह सन्त करते हैं न कि वहाँ कृ... पहुंचा, न राम वहाँ पहुंचा, न पाराशर न वशिष्ठ और न मुहम्मद वहाँ पहुंचा। क्या मैं हक नहीं रखता था, इस बात की खोज करने के लिये या इस बात को जानने के लिये कि सच्चा राम क्या है ?। मेरे दातादयाल (महर्षि शिव ने मुझ पर अहसान किया जिसको मैं जीवन भर शरीर की सुधि रहते भूल नहीं सकता। उन्होंने मुझे यह गुरू पदवी देकर मुझको असली और सच्चे राम का भेद तथा पता दिया।

वह भेद कैसे पता लगा ? तुम में से दहली से यह भूपसिंह आया हुआ है। इसने ८-९ वर्ष बाद अपनी घटना सुनाई कि यह मरने लगा था कुतुबमीनार से गिरकर, डूबने लगा था जमुना में। अन्त में बिजली को छूकर मरने लगा। उस समय मेरा रूप प्रकट हुआ। वह मेरा रूप कहता है जाग ! जाग !! कृषक (श्री गोपीलाल, अलीगढ़ निवासी) या और दूसरे ल खों सत्संगी हैं जो यह कहते हैं कि मेरा रूप स्वप्न में या अभ्यास में प्रकट होता है तथा अफ्रीका या अमरीका में प्रकट होता है, मरते समय ले जाता हैं तथा पत्र दे जाता है आदि २। चूंकि मैं नहीं होता हू और न मुझे कोई इसकी जानकारी होती है तो मैं विवश हो गया यह समझने के लिये कि जिसको मैं राम मानकर पूजता था गुरू मानकर पूजता था अथवा जिस रग या रूप को पूजता था और मेरे अन्तर प्रगट होता था वह मेरा अपना ही बनाया हुआ था। वह मेरा अपना ही विश्वास सिद्ध हुआ क्योंकि मैं दूसरों के अन्तर नही जाता हूँ। दूसरे महात्मा जाते होंगे मुझे पता नहीं। दातादयाल गये होंगे, स्वामी जी महाराज गये होंगे मगर सचमुच यह भी नहीं गये होंगे। मैं अपनी बात जानता हूँ कि मैं नहीं जाता। उन्होंने पर्दा रक्खा,

मान लिया, धन दौलत इकट्ठी की। मैं निर्भय होकर संसार को कहे जाता हूँ कि यदि हिन्दू फिलोस्फी ठीक है और आवागमन का चक्र और कर्म का फल किसी को मिलता है तो ऐसे महात्माओं जिन्होंने इस बात का पर्दा रखकर अपना मान लिया, धन इकट्ठा किया, गुरू बनकर संसार में खेले, अपनी गद्दियाँ बनायीं, डेरे बनाये, अपने धाम बनाये केवल इस ख्याल को पद में रखकर तो इनका क्या परिणाम हुआ, मैं नहीं जानता। मैं तो डरता हूँ।

तुम लोग मेरे साथ आये। मुझे आपके मान की आवश्यकता नहीं है। आपसे धन की आवश्यकता नहीं। मेरा जीवन बदल गया है। कोई आरजू (इच्छा) बाकी नहीं।

आरजू है तो यह है कि कोई आरजू न हो।
मैं को मिटा दू साथ में इसमें कि तू न हो।।
खिरका न हो जिस्म पर, न सिर पर शाही ताज।
मुझको अब अपनी जात को भी जुस्तजू न हो।।

आप लोग आये। मेरे वचन रैकार्ड करते हैं और दूसरों को सुनाते हैं। दूसरों को सुनाने की बजाय मेरा भाषण तुम स्वयं सुनो। दूसरों को उपदेश देने से फंस जाओगे। जो व्यक्ति दूसरों को उपदेश करता रहता है और स्वयं अमल (आचरण) नहीं करता वह पार नहीं कहा जा सकता। जिस तरह मल्लाह लोगों को नाव में बिठाकर पार करता रहता है, यात्री तो दूर देशों को चले जाते है मगर उसका चक्र उस नदी पर लगता रहता है। वह किसी दूसरे देश नहीं जाता। वह तो नाव में ही रहेगा। इसी तरह मेरी समझ में यह आया है कि हम (गुरु) लोगों को उपदेश देते है अपने मन्दिरों, मठों तथा डेरों के लिये अथवा गुरु बनने के लिये, यह पार नहीं जा सकते।

मैंने यह कार्य क्यों किया ? सन् १९०५ ई० में जब राधास्वामी मत में आया था उसकी वाणियाँ सुनी थी कि सब ही अधूरे रह गये । कौन आदमी है जो अपने पुरुखों की बुराई सुन सकता है । मैं पाराशर ऋषि की सन्तान हूँ, स्वामी जी ने तो लिख दिया कि पाराशर भूल गया आदि आदि । तो मैंने प्रण किया था कि मैं इस रास्ते पर चलूंगा और जो कुछ मेरी समझ में आयेगा, संसार को बता जाऊँगा । पता नहीं दातादयाल (महर्षि शिव) ने मेरे ही इस कर्म को काटने को यह काम दिया हो । मैं तो यह समझता हूं कि मुझको इस बात को समझाने के लिये कि इनमें से कोई भी इस अन्तिम अवस्था पर नहीं पहुचा, मुझे यह काम दिया गया था । फिर वह अवस्था क्या है ? आज कबीर की वाणी सुनाता हूँ कि वह अवस्था क्या है ?

मन और सुरत

तू सूरत नैन निहार, यह अंड के पारा है ।
तू हिरदे सोच विचार, यह देश हमारा है ॥

कबीर कह गये, राधास्वामी दयाल कह गये कि भई ! वह अण्ड से परे है । अण्ड किसे कहते हैं ? मन को । एक पिंड, एक अण्ड, एक ब्रह्माँड । वह कह गये कि वह मन से परे है । मेरी समझ में यह नहीं आता था कि वह अण्ड से परे कैसे हैं । मैंने तो उसको जितना पूजा अपने मन से ही पूजा । मैंने क्या समस्त धर्म, सम्प्रदाय वालों ने मन से ही पूजा की । यदि किसी ने मालिक का कोई रूप बनाया तो वह उसके मन ने बनाया । वह तो मालिक नहीं था । आदमी ने उसको रूप देकर उसको पूजा । फिर इस अण्ड से मुझको किसने निकाला ? आप लोगों ने निकाला । भूपसिंह ने, कृषक (श्री

गोपीलाल) तथा कमालपुर वाली माई ने निकाला। दूसरे सत्संगी जिनके अन्तर मेरा रूप प्रकट होता है, उनको दवा बताता है, मरते समय ले जाता है, उन्होंने निकाला। देखो आनन्ददयाल ! तुम लोग आते हो मैं तुम लोगों से किसी वस्तु की आस नहीं रखता। क्यों ? क्योंकि मेरे जीवन ने यह मान लिया और जीवन के अनुभव ने सिद्ध किया कि यह लेना देना पिछले जन्म के कर्मों के अनुसार है। जिससे मैंने लेना है उससे ले लेना है। जिसने मुझसे लेना है मुझसे ले लेना है। इस एक ख्याल ने मुझे संसार की आशाओं से बरी कर दिया।

जो यह कहते हैं कि किसी ने उसको अपने आँखों से बाहर में या अन्तर में देखा या जो कहते हैं कि उन्होंने भगवान की आवाज अन्तर में सुनी, तो जिस तरह भूपसिंह के अन्तर में आवाज आई जाग ! जाग !! जाग भई जाग !!! यह आवाज देने वाला मैं तो था नहीं। कौन था ? उसका अपना ही मन था। कोई और नहीं था। जब कोई आदमी इस अण्डे से निकलेगा तो वह अंडे से निकलने के बाद उस मालिक को कौन अनुभव करेगा ? सुरत। सुरत कभी रूप नहीं बनाती, रूप सदा मन बनाता है। सुरत केवल खेंचती है। उसको तवज्जह जाती है। सुरत में कोई शक्ति है, तो खेंचने की है। एक ओर से दूसरी ओर जाने की है। जब मन रूप बनायेगा तो उस समय सुरत मन के साथ होगी जो रूप बनायेगा। मन के बीच में सुरत रहेगी मगर रूप जब बनायेगा मन बनायेगा। जब मन आता है तो सुरत तो जाती है मगर मन का (Cover) खोल लिये हुए होती है। सुरत रूप नहीं बना सकती उसमें खिचाव होता है। वह मन के साथ खिचेगी। खिचने का नाम है आनन्द। तुम आनन्द की अवस्था में रूप नहीं बना सकते।

सुरत की भक्ति का नाम है लय होना (समाधिष्ट होना)। इसलिये वह कहते हैं :—

तू सूरत नैन निहार, यह अण्ड के पारा है।

सुरत का नैन फिर क्या हुआ ? खिचाव, आकर्षण। मैं तुमको देख रहा हूँ। यहाँ से इस ओर देखने में मैंने कोई रूप तो नहीं बनाया। सुरत केवल एक ओर से हटकर दूसरी ओर चली गई। सुरत का मन तथा रूप रंग और रेखाओं की ओर से हट जाना ही सुरत के नैन से देखना है। आगे कहते हैं :—

तू हिरदे सोच विचार, यह देश हमारा है।

रूप रंग रेखाओं को छोड़ कर जिस ओर को सुरत जाती है हमारा देश है। कहने को तो कह जाऊंगा मगर समझेगा कौन ? केवल जिसकी सुरत इन रूप रंगों को छोड़कर उस ओर ध्यान करेगी जिस ओर रूप रंग रेखाये नहीं है। यदि सुरत उन रूप रंगों को छोड़कर दूसरे रूप रंगों को देखेगी तो वह सुरत है मगर उसके साथ मन है। जब तक किसी की सुरत रूप रंग रेखाओं को छोड़कर अरूप अरंग की ओर नहीं जायेगी, तब तक वह अपने देश या घर या अपने आदि को प्राप्त नहीं कर सकती। सोच लो ! मास्टर मोहनलाल कितना कठिन काम है। इस अवस्था का कोई अधिकारी है ? दातादयाल कहा करते थे :—

कठिन नाम है कठिन काम हूं कठिन फकीर कमाई।
जग के भौ दुख नासें पल में, जब कोई फकीर जग आई।।

इसलिये मैं वह फकीर हूँ कि जो मेरी संगत करे, मेरी बात को समझे वह इस भव के जाल से निकल सकता है।

पहले ध्यान गुरु को धारो।
सरत निरत में पवन चितारो।।

वह कहते हैं पहले गुरु का ध्यान करो। एक तो हम लोग अन्तर में गुरु का ध्यान करते हैं मगर यदि किसी को बाहर में पूर्ण गुरु नहीं मिला हुआ है वह लाख कोशिश करे, अन्तर में गुरु के रूप का दर्शन कठिन है। गुरु अन्तर में प्रगट तो हो जायेगा, मगर वह रूप जो है वह तुम्हारे मन का है। वह जो रूप तुम्हारे अन्तर में प्रकट होता है वह तुमको वहाँ (उस अवस्था) का इशारा नहीं दे सकता। यहाँ कबीर का कथन है :—

सुहेलना धुन में नाम उचारो।
तब सतगुरु लहा दीदारा है ।।

वह सतगुरु कौन है जिसका दीदार या दर्शन वहां होता है। दुनियाँ अनजान है, भूली हुई है उस सतगुरु का रूप जो कबीर की शर्त को पूरा करे। सुलेहना धुनि में नाम जपने के बाद सतगुरु प्रकट होता है। वह कौन सतगुरु है ? 'आपा' कहता हूं तो तुम लोग भूला हुआ कहोगे। वह तुम्हारी अपनी ही सुरत है। कोई दूसरा गुरु वहाँ नहीं है न बाबा फकीर, न बाबा सावनसिंह, न कोई और ! वह तुम्हारा निज स्वरूप है। दाता दयाल का शब्द है :—

घट में दर्शन पाओगे, संदेह कुछ इसमें नहीं।
मैं तो घट में हु तुम्हारे, ढूंढ लो मुझको वहीं ।।
शब्द सुनते हो मेरा, चित्त की वृत्ति तान कर।
सुरत मेरा रूप हैं, इसको समझ लेना वहीं ।।

वहां का संकेत कोई करेगा तो वह बाहर का पूर्ण गुरु करेगा यदि किसी को मिल जाय, जिस तरह पूर्ण पुरुष महर्षि (शिव जी ने ऊपर के शब्द में प्रकट किया है।

जो रूप गुरु का या राम का या कृष्ण का अपने मस्तिष्क

में कोई बनाता है वह रूप तुमको, तुम्हारी सुरत को अ
में उस अवस्था की ओर,जो रूप रंग रेखा से न्यारी है; इशारा नहीं कर सकता। इशारा जो कोई करेगा, बाहर का पूर्ण गुरु करेगा। बाहर का गुरु तुमको यह ज्ञान देगा मगर बाहर के पूर्ण गुरु की पहिचान भी कठिन है। अच्छा यदि किसी को मिल भी जाय जैसा मुझको मिला तो यह मन रूप और रेख यें इतनी प्रबल है कि यह अपने चंगुल से सुरत को निकालने नहीं देती। इसलिये इस ऊंची शिक्षा को सन्तों ने गुप्त रक्खा और मुझे भी रखना चाहिए था क्योंकि जब तक मनुष्य को पहले मन को एकाग्र करने, सूक्ष्म बनाने तथा मन को वश में करने का साधन नहीं मिला है वह आगे नहीं जा सकेगा। इसलिये मैं नाम नहीं देता। यह मेरा कर्त्तव्य नहीं है। यह साधुओं की डयूटी है तथा भक्तों की डयूटी है जो जीवों को उनके मन के चक्रों से सूक्ष्म बना दें। चूंकि तुम्हारी पहिली सीढ़ी (Stage) का साधन पूरा नहीं है, इसलिये लिखा है :—

> पहिले ध्यान गुरु का धारो।
> सुरत निरत मन पवन चितारो॥
> सुहेलना धुन में नाम उचारो।
> तब सतगुरु लहो दीदारा है॥

पहिले सबको यह साधन करने पड़ते हैं—सुमिरन, ध्यान, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न। जब तक यह नहीं लगाओगे, तुम आगे जा नहीं सकते। इसलिये सन्तों का मार्ग सर्व साधारण लोगों के लिये नहीं है। जो लोग साधक होते हैं महापुरुष उनको काम दे देते हैं, ताकि इस काम से वह आप भी मन की गढ़न करते रहें। मेरे विचार में यदि करोड़ों गद्दियां बन जांय तो मुझे कोई खेद नहीं है। बड़ी खुशी की बात है। गद्दियों

के बिना तो काम ही नहीं चलता। एक ही आदमी से सारी दुनियाँ कैसे शिक्षा प्राप्त कर सकती है! करोड़ों आदमी हैं बात करने तक का अवसर नहीं मिलता। उनसे समझने का अवसर नहीं मिल पाता। इसलिये कोई यह न समझे कि मैं गद्दियों या इन साधुओं के विरुद्ध हूँ। मेरे भाव को लोग समझते नहीं। जब प्रारम्भिक सीढ़ियाँ हो जाती है। ध्यान जमने लगता है, मन एकाग्र होने लगता है, सुरत पूरी पूरी अपने आप में ठहर जाती है, जिसको कहते हैं :—

तू सुरत नैन निहार, यह अण्ड के पारा है।
तू हिरदे सोच विचार, यह देश हमारा है॥
पहिले ध्यान गुरु का धारो, सुरत निरत मन पवन चितारो
सुलेहना धुनि में नाम उचारो, तब सतगुरु लहो दीदारा है।
सतगुरु दरस होय जब भाई, वे दें तुमको नाम चिताई।
सुरत शब्द दोऊ भेद बताई, तब देखे अण्ड के पारा है॥

जब मन स्थिर हो जाता है तब बाहर का गुरु तुमको भेद दे देता है। आनन्द दयाल! तुम आते हो यह ठीक है। वर्षों से हमारा तुम्हारा सम्पर्क रहा है। पिछले जन्मों का सम्बन्ध होगा। मेरी इच्छा है कि जितने आदमी मेरी संगत में आये हैं उनको रहस्य बता जाऊँ भेद बता जाऊं कि सचाई क्या है, ताकि जीवन भर तुम बाबे फकीर की ही ढपली न बजाते रहो। जिस ध्येय के लिये तुम बाबे फकीर के साथ लगे हो वह तुम्हारा ध्येय पूरा हो जाय।

वह ध्येय क्या है। तुमको भेद मिल जाय। गुरु के साथ सम्बन्ध पैदा करने का उद्देश्य क्या है? यही कि तुमको रहस्य ज्ञात हो जाय कि असलियत क्या है। यही कबीर ने कहा है। यही स्वामी जी ने कहा है। मैं जो सत्संग कराता हूँ केवल भेद बताने के लिये कराता हूँ। लोगों को अपने दायरे

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

या मण्डल में बाँधने के लिये नहीं कराता। एक दृष्टिकोण दूसरे गुरु आम लोगों के लिये लाभदायक भी हैं। क्योंकि वह दुनियाँ मे फंसे हुए जीवों को दुनियां से निकालकर गुरु के जाल में फंसाते हैं या सम्प्रदाय के जाल में फंसाते हैं। जो फंसा हुआ है, (चाहे वह दुनियाँ में फंसा हुआ है, चाहे धर्म या डेरे में फंसा हुआ है अथवा किसी गुरु के जाल में फंसा हुआ है) उससे निकालने के उददेश्य से या इस नीयत से कि उसके बन्ध कट जायें, मैं सत्संग कराता हूँ। वह बंध मेरे निकट, जहाँ दुनियां का जाल है वहाँ पथ, धर्म और गुरु का भी जाल है। मैं निर्बन्ध पुरुष हूँ, बीतराग हूँ, मायातीत हूं, आप्त पुरुष हूँ। चूंकि मैं बन्धन से छुड़ाना चाहता हूँ इसलिये वह विधि नाम-दान की जो आज दिन तक प्रचलित है और शायद रहेगी भी जिससे जीव एक बन्धन से छूट कर दूसरे बन्धन में आयें, वह प्रयोग नहीं करता। बाहर के गुरु से सम्बन्ध पैदा करने का जो उद्देश्य मैंने ऊपर बताया है यही कबीर ने कहा है, यही स्वामी जी ने कहा है :-

गुरु ने अब दीन्हा भेद अगम का।
सुरत चली तज देश भरम का॥
भटकन छूटा दहर व हरम का॥

दाता दयाल [महर्षि शिव] मुझको भेद देते थे। वह समय और था। उन्होंने सैन बैन या संकतों में वाणियों द्वारा भेद दिया :—

प्यार छाया से किया, छाया का रूप जाना नहीं।
तुमने अपना और उसका, रूप पहिचाना नहीं॥

उस समय में य पहिले समय में पर्दे में (गुप्त) रखकर भेद दिया जाता था। मैंने उस पर्दे को उठा दिया। पर्दा उठा देने से क्या हुआ? यह कि मेरे पास केवल सीमित आदमी आते

है जिनको इस परमार्थ की असली चाह है। दूसरे नहीं आते। आ ही नहीं सकते। दूसरे मुझको इसकी आवश्तकता नहीं है कि लोग मेरे पास आयें। क्यों? क्योंकि मैं तो अपना कर्म भोगता हूं। मैंने यह प्रण किया था कि अपना अनुभव बता जाऊंगा। कबीर ने भी इस शब्द में यही लिखा है कि गुरु तुमको भेद देता हैं :—

सतगुरु दरश होंय जब भाई, वे दें तुमको नाम चिताई।
सुरत शब्द दोऊ भेद बताई, तब देखे अण्ड के पारा है ।।

जब तक किसी की सुरत शब्द में नहीं लगती, वह अण्ड के पार जा नहीं सकता। न अण्ड के पार जा सकता है न ब्रह्मांड के पार जा सकता है। जब तक तुम्हारी सुरत रूप रेखाओं में फंसी रहती है तुम अंड से पार नहीं जा सकते। गुरु क्या करता है? वह भेद देता है। इसलिये मैंने अपने आप को सन्त सतगुरु वक्त कहा है। मैं सत्संगों में करता क्या हूँ? पुस्तकों में क्या लिखता हूँ ससार का भेद ही तो देता हूँ। कबीर ने कह दिया कि सतगुरु भेद देता है। यदि मैं अपने आप को सतगुरु कहता हूँ तो कौन सा जुर्म करता हूँ।

सतगुरू कृपा दृष्ठि पहिचाना, अण्ड शिखर बेहद मैदाना।
सहज दास तहं रोपा थाना, जो अग्रदीप सरदारा है ।।

सतगुरू ने कृपा कर दी। क्या कृपा! यही कि उसने भेद दे दिया, असलियत बता दी कि अरे जीव! यदि तू इस माया व काल के चक्र से निकलना चाहता हैं, जन्म मरण के चक्र से बचना चाहता है जो हमेशा इसमें आता रहता है तो किसी सतगुरू की शरण लेकर रहस्य जान ले मगर इस चक्र से निकलना कोई नही चाहता। अपने दिलों से पूछिये। यह जितने खेल तुम करते हो ये क्या है? यह सब तुम्हारे मन के भाव हैं चूंकि मन के जो भाव हैं इनमें सिद्धि शक्ति है। इच्छा शक्ति

बढ़ी हुई होती है, इसलिये यह जो प्रेमीजन या भक्तजन हैं हैं उनसे जाने या अनजाने स्वयं ऋद्धि सिद्ध होती रहती है। ऋद्धि सिद्धि तो होती है जीवों की अपनी श्रद्धा, विश्वास और मन की एकाग्रता के कारण और यश (Credit) ले जाते हैं हम गुरू लोग कि हमने फूंक मार दी।

यह आवागमन का चक्र बड़ा प्रबल है। पहिले तो विश्वास नहीं था। कई बार ख्याल आया कि शायद आवागमन न हो। हिन्दुओं में यह भ्रम या मिथ्या धारणा हो, मगर स्थितियाँ बताती हैं कि यह आवागमन ठीक है। मैंने कई आदमियों की कुण्डलियाँ भृगु संहिता में से निकलवाई। उनके हालात सुने यह हरविलास यहाँ पर हैं। इनके लड़के की कुण्डली निकली जिस व्यक्ति ने निकाली वह इनका बड़ा ही प्रेमी है। फिर मैं कैसे मानूं कि भृगु संहिता से कुण्डली निकाल कर बताने वाले ने कोई धोखा किया हो। जो कुछ उसमें लिखा था वह पढ़ कर सुना दिया। उसमें लिखा था कि इसने किसी के साथ धोखा किया। उसके बदले में इसको जीवन में कष्ट हुए।

एक और लड़का जो ५-५ घण्टे अभ्यास करता है, मेरे पास आता रहता है। कम बोलने वाला है। उस ज्योतिष ने उसकी भी कुण्डली भृगु संहिता से निकाली। उसने कहा कि यह लड़का किसी समय बड़ा भारी पण्डित था। वेद शास्त्रों का ज्ञाता था। एक शिष्य को और अपने लड़के को एक मुख्य विषय की शिक्षा देता था। लड़के ने अपने बाप से कहा कि यदि सम्पूर्ण शिक्षा इस अपने शिष्य को दे दोगे तो मेरा मान घट जायेगा। मैं जो दुनियाँ में उन्नति करके यश लेना चाहता हू वह नहीं मिलेगा। वह इसके चक्र में आ गया। उसने शिष्य को सच्ची बात नहीं बताई। पूर्ण शिक्षा नहीं दी। अपने पुत्र

को दे दी। शिष्य को जब यह ज्ञात हुआ कि मुझे अधूरी शिक्षा मिली है तो वह बहुत दुखी हुआ और उस दुख में मर गया। उसके बाप का जब शरीर छूटा तो वह आकाश में या धर्मराज के पास तो उसके विरुद्ध तो कुछ था ही नहीं सिवाय उस एक बात के। तो स्वर्ग में रहने के बजाय उसको फिर खग योनि में भेजा गया कि तूने धोखा किया है। यह भृगु संहिता ने कहा। सच झूठ भगवान जानता है मगर परिस्थितियों से यह कुण्डलियाँ सैकड़ों वर्ष पहले से लिखी हुई हैं और जिन्होंने यह बनायीं उन पर हम विश्वास करते हैं कि उन्होंने कोई धोखा नहीं किया। इसलिये हम आवागमन को मानते हैं। हिन्दू ही नहीं मानते बल्कि बुद्ध भी मानते हैं, सन्त भी मानते हैं। जब हम मानते हैं तो फिर वह आदमी जो था (जो लड़का है भृगु संहिता बताता हैं वह मुसलमान हुआ और मानव चोले में आकर बंगाल में जिस समय चैतन्य महाप्रभु थे, पाँच सौ वर्ष हुए वह मुसलमान था। उनके विरुद्ध रहा करता था। चैतन्य महाप्रभु उसके पास गये आरती करते हुए। पहिले तो वह भाग गया। फिर वह आया। उनकी रेडियेशन से, उसके संस्कारों से वह लड़का जो मुसलमान बना हुआ था उसके संस्कार बदले। फिर वह चैतन्य महाप्रभु के साथ सहमत हो गया। उसको मुसलमान चोले के बाद यह चोला मिला जिसमें वह इस समय है। उसमें लिखा हुआ है कि अब यह इस जन्म में अपनी कमाई पूरी करके आवागमन से बच जायेगा।

एक तो मैं ब्राह्मण, एक सन्तों के यहां आया। मैं सोचता हूँ कि उस विद्वान व्यक्ति ने एक थोड़ी सी पौलिसी की कि अपने लड़के को मान देने के लिये शिष्य को पूरी शिक्षा नहीं दी। उसका फल उसको यह भोगना पड़ा। मैं सोचता हूँ कि मैं या दूसरे गुरू लोग जो अपनी गुरुयायी के लिये, अपने मान के

लिये अपनी गद्दी के लिये शिष्य को पूरी शिक्षा नहीं देते सच्ची बात नहीं बताते और हर बात को पर्दे में रखते हैं वह कहाँ जायेंगे ? अब इस कर्म के जाल से निकलने के लिये ताकि हमारा आवागमन का चक्र सदा के लिये समाप्त हो जाय, क्या करना पड़ता है :—

कबीर का शब्द जो ऊपर पढ़ा जा चुका है उससे प्रगट है कि जब तक बाहर का गुरू किसी को भेद नही देता कि नाम है क्या तब तक वह पार नहीं जा सकता ।

सतगुरू कृपा दृष्टि पहिचाना अंड सिखर बेहद मैदाना ।
सहज दास तहँ रोपा थाना, जो अग्रदीप सरदारा है ।।

जिस समय यह ज्ञान हो जाता है कि मेरा असली घर मन से परे है और जब वह मन को छोड़कर उसकी सुरत आगे चली जाती है वहाँ क्या होता है ? सुरत शान्त हुई आगे को चलती है । बेहद मैदान आ जाता है जिस तरह यह पृथ्वी बेहद मैदान है ।

जिस तरह यह स्थूल देश बड़ा विस्तृत है इसी तरह से मन का देश भी बहुत विस्तृत है । इससे बढ़कर सुरत का देश है । इससे आगे और मंजिलें हैं इस शब्द में । कबीर के तीन शब्द हैं :—

(१) कर नैनन दीदार महल में प्यारा है ।
(२) कर नैनन दीदार वह पिंड से न्यारा है ।
(३) तू सुरत नैन निहार, यह अण्ड से पारा है ।

जो सब साधारण लोग हैं उनका कहा जाता है कि जो कुछ है तुम्हारे शरीर में है, उसको वहाँ ढूंढो क्योंकि वह स्थूल से ऊंचे जा नहीं सकते । जब शरीर में प्रवेश कर जाते हैं उन को कहा जाता है कि जो कुछ है तुम्हारे मन में है । इस स्थूल

देही में कुछ नहीं है। जब उनको मन का अनुभव हो जाता है तो फिर उनको कहा जाता है कि जो कुछ है सुरत में है—तू सुरत के नैन से निहार।

तुम लोग प्रेम के भाव वश आये हो। दिल्ली छोड़ी यहां आ गये। मुझ भी तकलीफ हुई दूसरे के घर में आया मगर यह प्रेम बावला होता है। किसी के वश की बात नहीं। यह मन के भाव होते हैं। जिस तरह मन के चक्कर में आया हुआ मनुष्य किसी स्त्री के मोह में फंसा हुआ उसके मिलने या उस की समीपता प्राप्त करने के लिये अपने मान या अपमान अथवा धन दौलत की परवाह नहीं करता ऐसे ही जब जीव इस रास्ते मैं चलता है मालिक की खोज में, परमार्थ के शौक में तो वह इन बातों की, दुनियाँ लवाजमात की, दुनियां क्या कहेगी, किसी को कष्ट होता है कि नहीं, देखा नहीं करता। मजनूं की कहानी सुनी होगी। मैं अपनी ड्यूटी समझता हूं कि आपको असली और सच्ची बात बताऊं। यदि दुनियां की वस्तुओं के लिये आये हो तो जहां है तुम्हारा विश्वास, वहाँ विश्वास करो। मन से विश्वास करो। जैसी तुम्हारी आशा है वैसा हो जायेगा। यदि तुम आये हो अपने घर जाने के लिये तो रास्ता मैंने आपको साफ कर दिया। क्या रास्ता है ? अपने अन्तर में शब्द को पकड़ो, नाम को पकड़ो। जीवन में कोशिश करो। भूपसिंह है मा० मोहनलाल है, रामचन्द्र है ! यदि तुमसे शब्द नहीं पकड़ा जाता, तुम ऊंचे नहीं जा सकते तो उसका इलाज यह है कि जो गुरु रूप तुम अपने अन्तर बनाते हो उसको बाबा फकीर मस्तराम का पुत्र मत समझो, उसको समझो कि वह शब्द स्वरूप है वह मालिक है। इसलिये सन्तों ने या धार्मिक के जगत के लोगों ने रोचक बातें कहकर कृष्ण को ब्रह्म का अवतार कहकर लोगों का विश्वास बैठाया ताकि जब वह

कृष्ण का ध्यान करेंगे और यदि उनको विश्वास है तो वह रूप को यह नहीं समझेंगे कि वह कृष्ण है जो ब्रज में पैदा हुए वह उनको ब्रह्म स्वरूप मानेंगे। इसलिये सन्तों ने कहा है :—

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः

यदि तुम अपने अन्तर में उस रूप को मानकर, वह रूप जो प्रगट होता है, उसको शब्द और प्रकाश मानकर प्रेम करोगे तो जैसी आशा वैसी वासा हो जायेगी। चूंकि तुमने उस रूप को पारब्रह्म माना है या पूर्ण शब्द माना हुआ है तुम्हारी आशा के अनुसार तुम्हारा परिणाम अच्छा हो सकता है। मुझ पर तो दातादयाल ने दया कर दी। मैं तो हद बेहद से परे चला गया। कोई चाह, कोई वासना नहीं।

चाह गई चिन्ता गई, मनुआ बे परवाह।
जिसको कुछ नहि चाहिए, वह शाहों का शाह ।।

यदि वहाँ तक नहीं पहुचा जा सकता तो गुरु स्वरूप को यह मत समझो कि जो तुम्हारे अन्तर प्रकट होता है जिसको तुम बनाते हो, चाहे किसी को बनाया हो। उस रूप को शब्द ब्रह्म मानो, पारब्रह्म समझकर तुम चलो। जहाँ तुम सच्चे होकर चलोगे तुम्हारा काम बन जायेगा। यदि भाग्य अच्छा है जीवन में शब्द और प्रकाश प्रकट हो गया है तो तुम तर गये।

तुम लोग इतना किराया भाड़ा खर्च करके आये हो। टेपरेकार्ड लाये हो। मुझ तो अब कोई इच्छा नहीं। किसी का जी चाहे टेपरेकार्ड किसी को सुनाये, जी चाहे न सुनाये। किसी का जी चाहे मेरी पुस्तक पढ़े, जी चाहे न पढ़। क्यों ? क्योंकि यदि मैं इस आशा में रहूँ कि मेरी लिखी हुई पुस्तकें दूसरे पढ़ें,

मेरा टेपरिकार्ड सुनें, मेरा नाम हो तो मैं इस भवसागर से परे नहीं जा सकता, क्योंकि मेरी आशा नाम और मान के पीछे है। किसी की आशा धन की चाह के पीछे है। किसी की मान के पीछे है। किसी की कोई और चाह है। मैंने सुबह कहा था कि तुम आये हो। मेरे पास से खाली न जाओ। अमल करना तुम्हारे हाथ हैं।

अब रह गया कि पहली कड़ी में है गुरु की दया। वह कहते हैं कि गुरु दया करे! गुरु दया करे! तुम लोगों को पता नहीं कि गुरु की दया क्या होती है।

पहिले ध्यान गुरु धारो, का सुरत निरत मन पवन चितारो
सुहेलना धुन में नाम उचारो, तब सतगुरु लहो दीदारा है।

फिर सतगुरु क्या करेगा—

सतगुरु दरस होय जब भाई, वह दें तुमको नाम चिताई,
सुरत सबद दोऊ भेद बताई, तब देखे अण्ड के पारा है ।।

सतगुरु की दया यही है कि वह सार भेद देता है तुम्हारी बुद्धि को निश्चयात्मक कर देता है। जहां तुम्हारी बुद्धि निश्चयात्मक हुई तुम्हारा काम बन जायेगा। बुद्धि का निश्चयात्मक होना एक ढंग से ही नहीं है दुनियाँ के लिये भी निश्चयात्मक होती है वह कैसे? मीराबाई को सत्संग में सतगुरु ने यह विश्वास दिलाया हुआ था कि ठाकुर का प्रसाद अमृत होता है, विष नहीं। चूंकि उसको यह निश्चय हो गया था और जब उसको विष दिया गया उस विष ने उस पर असर नहीं किया। देखो! मैं दिल्ली जाया करता हूँ। मैं किसी को नाम नहीं देता। सैकड़ों आदमी मेरे पीछे फिरते हैं। १०-१२ वर्ष से मैं सोचा करता था कि मैं तो किसी को नाम नहीं देता यह लोग क्यों पीछे फिरते हैं। बात मेरी समझ में आती नहीं थी। पता करने पर मालूम हुआ कि इस भूपसिंह का मुझ पर

विश्वास आया हुआ है तो यह मेरे पास से प्रसाद ले ज
था । कोई दुखिया इसके पास आता, यह कहता भई यह ब।ब।
जी का प्रसाद है । यह ले फोटो । ध्यान किया कर तेरा काम
हो जायेगा । उनके काम बनते रहे । तो जो काम इसने उसके
साथ किया वह क्या किया ? उनको विश्वास दिलाया बस !

सेठ साहब ! आपके यहाँ सत्संग करा रहा हूँ । यह हमेशा दुनियां की बात है । वह जो अन्तिम अवस्था है वह तो कहीं भाग्य से मिलेगी । हमेशा यह विश्वास करो, यह बड़ी ऊंची रहनी है कि भगवान जो करता है, अच्छा करता हैं । जो होगा सो भला होगा । वह तुम्हारे लिये अच्छा करता है ।

जो करिहे सो भला ।

तो जो यह तुम्हारी बुद्धि निश्चयात्मक हुई है इसकी वजह से वह तुम्हारे लिये सुखदायक होगी, दुखदायक नहीं होगी । एक निश्चयात्मक बुद्धि है परमार्थ की ।

नाम की अवस्था बहुत ऊंची है उसकी तो दुनियाँ वालों को या आप लोगों को आवश्यकता नहीं । आप गृहस्थी हैं तो कम से कम इतना करो कि अपनी बुद्धि को निश्चयात्मक कर लो । यह जो कुछ तुम्हारे लिये होगा वह ठीक होगा । इससे नीचे कोई काम करना हो तो यह सोचकर नहीं करना कि खराब न हो जाय हमेशा यह सोचना कि हम जिस काम का हाथ लगाते हैं हम सफल हो जायेंगे । आपको यह शब्द कहे जाता हूँ ।

चूंकि मनुष्य का मन बड़ा निर्बल है वह अपने आप पर विश्वास नहीं रख सकता, इसलिये जो भी तुम्हारा इष्ट है— राम का, कृष्ण का, भगवान का अथवा गुरु का, सदा यह

कर देगा। बस कुंजी मैंने आपको बता दी। अमल करना या न करना तुम्हारा काम है। आशावादी होकर रहो। कभी न सोचो कि यह बिगड़ जायेगा। मैं क्या करता हूं ? लोग कहते हैं—बाबा जी ! तुम कह दो ! हमारा काम हो जायेगा। यदि मैं कह देता हूँ उनका विश्वास होता है उनका काम हो जाता है। यह जितना खेल है यह सब तुम्हारे विश्वास का फल है। परमार्थ और वस्तु है। वह तो विशेष गिने चुने व्यक्ति निकलते है। हजारों में दो चार होते है, जिनकी यह इच्छा है कि हम आवागमन से बच जायेंगे।

मैं चाहता हूँ कि आपका भला हो। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। गुरु है ही वही। गुरु भेद देता है। गुरु तुम्हारी बुद्धि को एक प्रकार का विश्वास देता है। गुरु का काम ही यही है कि दूसरे को एक बात पूर्ण निश्चय करा दे।

—×—

शब्द

'कोई बात न सुनता मेरी"

निज मन से कोई करे न सुमिरन, करते हेरा फेरी कोई०
सुरत पड़ी वश काल के आकर, गऊ सिंह ने घेरी कोई०
मोह माया में जीव फसे हैं, करे न कोई दिलेरी कोई०
दुर्लभ जन्म मिला तो फिर भी, चलती काम अंधेरी कोई
बड़े भाग्य हों सन्त मिले कोई, जिनकी माया चेरी कोई०
बिन गुरु पार लगाये केड़ा, भंवर पड़ो है बेड़ा कोई०
बार-बार यह समयन मिलता, चाल चले क्यों टेढ़ी कोई०
सर पर काल गरजता हरदम, जल्दी करो न देरी कोई०
'गाफिल' अपना आप पहचानो, छोड़ो मेरी तेरी कोई०

—गाफिल शब्दावली से